

मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनही सों करौं।
 मैं पर्व के उपवास चाहूँ, और आरंभ परिहरौं॥
 इस दुखद पंचमकाल माहीं, सुकुल श्रावक मैं लह्यौ।
 अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यौ॥७॥
 आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी।
 तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी॥
 वसुक्र्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये।
 करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये॥८॥

देव-स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आस।
 ज्ञान-भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनास॥
 जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहीं कहें कदा।
 परधन कबहुँ न हरहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रखें सदा॥
 तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष-सुधा नित पिया करें।
 श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, तिस की सेवा किया करें॥
 दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
 मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें प्रसार॥
 सुख-दुख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
 न्यायमार्ग को लेश न त्यागें, वृद्धि करें निज आतमबल॥
 अष्ट कर्म जो दुःख हेतु हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
 नाम आपका जपें निरन्तर, विघ्न-शोक सब ही टल जाय॥
 आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप-मैल नहीं चढ़े कदा।
 विद्या की हो उन्नति हम में, धर्म ज्ञान हूँ बढ़े सदा॥
 हाथ जोड़कर शीश नवायें, तुम को भविजन खड़े-खड़े।
 यह सब पूरो आस हमारी, चरण-शरण में आन पड़े॥

जलाभिषेक पाठ

(श्री हरजसरायजी कृत)

(दोहा)

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान ।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौ जोरि जुगपान ॥

(अडिल्ल और गीता)

श्री जिन जग में ऐसो को बुधवंत जू ।
जो तुम गुण वरननि करि पावै अन्त जू ॥
इन्द्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनि ।
कहि न सकै तुम गुणगण हे त्रिभुवन धनी ॥
अनुपम अमित तुम गुणनि वारिधि ज्यों अलोकाकाश है ।
किमि धरै हम उर कोष में सो अकथ गुण-मणिराश है ॥
निज प्रयोजनसिद्धि की तुम नाम ही में शक्ति है ।
यह चित्त में सरधान यातैं नाम ही में भक्ति है ॥१॥

ज्ञानावरणी दर्शन-आवरणी भने ।
कर्म मोहनी अन्तराय चारों हने ॥
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में ।
इन्द्रादिक के मुकुट नये सुरथान में ॥
तब इन्द्र जान्यो अवधि तैं, उठि सुरनयुत वंदत भयौ ।
तुम पुण्य को प्रेस्यौ हरि द्वै मुदित धनपति सौं कह्यो ॥
अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपद को करौ ।
साक्षात् श्री अरहंत के दर्शन करौ कल्मष हरौ ॥२॥

ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपति ।
चल आयो तत्काल मोद धारैं अति ॥
वीतराग छबि देखि शब्द जय-जय कह्यो ।
देय प्रदच्छिना बार-बार वंदत भयौ ॥
अति भक्ति भीनो नम्रचित द्वै समवशरण रच्यो सही ।
ताकी अनूपम शुभ गति को कहन समरथ कोउ नहीं ॥